राष्ट्रीय एकता का मूलाधार : संस्कृत भाषा

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

सहस्राब्दियों के इतिहास वाले इस देश को जिन तत्त्वों ने सांस्कृतिक और भावात्मक एकता के सूत्र में बांध कर आज तक एक राष्ट्र के रूप में जीवन्त रखा है उनमें संस्कृत भाषा प्रमुख है। भावात्मक एकता के कारकों में संस्कृति की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है जिसके धर्म एवं भाषा प्रमुख अंग हैं। यद्यपि धर्म का नाम लेना आज के परिवेश में निरापद नहीं है अतः उससे चाहे हम कतराएं किन्तु यह स्पष्ट है कि एक धर्म तथा एक भाषा देश के निवासियों को जोड़ने का बहुत बड़ा कारक होती है। इस देश में विभिन्न भाषा भाषियों और विभिन्न धर्मावलम्बियों को भी एक सांस्कृतिक इतिहास ने जोड़े रखा है। ऐसे अनेक कारकों में कलाएं तथा संगीत भी आते हैं जिनका नाम राष्ट्रीय एकता के कारकों में गिनाना चाहे अब तक चलन में नहीं आया हो। अब तक सन्तों, सूफियों, कबीर जैसे सुधारकों तथा राष्ट्रनेताओं के जीवनों को, ऐतिहासिक स्मारकों एवं स्वतंत्रता आन्दोलन की विभिन्न घटनाओं को ही हमारी धर्मनिरपेक्ष और सामाजिक संस्कृति के निदर्शन के रूप में गिनाया जाता रहा है। उस धर्मनिरपेक्ष संस्कृति की जिसमें राष्ट्रधर्म, कलाएँ और भाषाएँ आती हैं, संस्कृत भाषा सदियों से एकमात्र वाहिका रही है। इस दृष्टि से इसकी भूमिका राष्ट्रीय एकता के सूत्रों में मूर्धन्य है। इसके कुछ आधार तो बहुत जाने पहचाने हो गये हैं किन्तु कुछ अब भी विवेचन की अपेक्षा रखते हैं।

भाषिक एकता एवं समन्वय

यह आश्चर्यजनक तथ्य है कि इस देश की विभिन्न भाषाओं में (केवल एक या दो अपवादों को छोड़ कर) वर्णमाला, शब्दावली तथा व्याकरण संरचना में एक आधारभूत समानता पायी जाती है, चाहे इन भाषाओं को आज हम आर्य या द्रविड़ आदि विभिन्न भाषा-समूहों में रखने लगे हों। यह क्या आश्चर्यजनक नहीं कि समस्त भारतीय

भाषाओं की जिनमें बंगला, मराठी आदि आर्य भाषाएँ भी हैं और तमिल, तेलगु आदि द्रविड़ भाषाएँ भी, वर्णमाला और वर्णों का क्रम बिल्कुल एक सा है। स्वर और व्यंजन कवर्ग, ववर्ग आदि का विभाजन बिल्कुल समान है। वर्ण क्रम की यह समानता अन्य विभेदों के बीच एकता की आधारभूत कड़ी है। यह एकता चाहे संस्कृत एवं अन्य आर्य भाषाओं की उद्गम स्रोत किसी अन्य भारोपीय परिवार की मूल भाषा के कारण हों।

भाषा के कारण, किन्तु इसका बहुत बड़ा आधार यह रहा कि या वेद-पूरे देश में वर्णसमाम्नाय वही अपनाया गया जो संस्कृत भाषा ने अपनाया था। पाणिनि ने अपने व्याकरण में वर्णमाला के जो माहेश्वर सूत्र आधारभूत माने उनमें भी स्वरों का क्रम वही रहा। व्यंजनों के वर्ण भी संस्कृत में सदियों से यही थे जो आज हैं। पाणिनीय व्याकरण की सर्वमान्यता के कारण इस देश की समस्त भाषाओं ने संस्कृत के वर्णक्रम को अपनाया अष्टाध्यायी और पाणिनीय शिक्षा का यह वर्णक्रम सारे देश का वर्णक्रम बन गया। यही कारण है कि आज यदि वर्ण क्रम संस्कृत के अनुसार रखा जाए तो समस्त भारतीय भाषाओं में वह समान रूप से सुविधाजनक रहेगा। वस्तुतः भारत में प्रचलित अनेक भाषा विभाषाओं के बीच एक अंक सुसंस्कृत संपर्क भाषा की स्थापना के लक्ष्य से ही पाणिनि ने इसका व्याकरण बनाया था और यह संस्कृत भाषा देश की संपर्क भाषा बन गई थी।

वर्णमाला

संस्कृत की वर्ण माला के वर्णों का आज जो क्रम है अर्थात् पहले स्वर (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, आदि) फिर व्यंजन जिनमें पहले कवर्ग, फिर बवर्ग, फिर तबर्ग, फिर पवर्ग आता है। अनेक सदियों से चले आ रहे वर्ण समाम्नाय का ही रूप है उत्तर वैदिक काल में पथ्यास्वसिन नाम का तथा ब्रह्मराशि नामक वर्ण समाम्नाय उल्लिखित मिलता है। इसके आधार पर प्रातिशाख्यों और शिक्षाओं (उच्चारण और ध्वनि सिखाने वाले वेदांग (में इसी क्रम से अक्षर विद्या सिखाई जाती थी। लिपि चाहे जो कुछ रही हो, ब्राह्मी, नागरी, नन्दिनागरी, शारदा, वर्णों का क्रम प्रायः यही रहता था। इसी वर्ण समाम्नाय को माहेश्वर सूत्रों तथा उदित् के संदर्भ से पाणिनि ने भी अपने व्याकरण का आधार बनाया, कातंत्र आदि व्याकरणों में भी यह वर्णों का क्रम किस आधार पर है? यह मनमाना या निराधार क्रम न होकर वैज्ञानिक आधार पर प्रतिष्ठित है। मानवीय स्वर यंत्र कंठ से लेकर ओष्ठ तक ध्वनियों का उच्चारण करता है। अतः उच्चारण स्थानों का क्रम इसी प्रकार होगा। पहले कण्ठ, फिर तालु फिर मूर्धा, फिर दांत और होंठ। इसी क्रम में से संस्कृत के स्वर भी हैं और व्यंजन भी अ से औ तक स्वरों की और क, च, ट, त प वर्गों की आनुपूर्वी इसी सिद्धान्त पर बनायी गई है। क, का, कि, की, की बारहखड़ी भी इसी आधार पर है। इस वैज्ञानिक आधार को लेकर भरत की सभी लिपियों में वर्ण क्रम चला था

जो आज तक ब्राह्मी और नागरी लिपि की शाखाओं में ही मान्य नहीं है बल्कि द्रविड भाषाओं की लिपियों में भी मान्य है। तमिल आदि में इन वर्गों में वर्णों की संख्या चाहे कम हो (महाप्राण वर्ण न हो) किन्तु क्रम प्रायः वही है। यह भाषिक एकता क्या आश्चर्यजनक नहीं है?

शब्दावली

संस्कृत की शब्दावली भारत की समस्त भाषाओं में बहुत बड़ी मात्रा में व्याप्त है। यह हम सब कहते रहते हैं। इसे यों भी कहा जा सकता है कि जब संस्कृत का उद्भव हुआ था उसने समस्त देश की भाषाओं की शब्दावली को आत्मसात् कर अपना शब्द भण्डार विपुल और विराट बना लिया था। वैदिक काल में जो छांदस भाषा थी उसके शब्द भी संस्कृत में है, उस समय जो लोक भाषाएँ प्रचलित थी और जिन्हें पाणिनि ने भाषा शब्द से या विभाषा शब्द से व्यवहत किया है उन सबसे शब्दों को लेकर पाणिनि ने उनका संस्कार किया, संस्कृत व्याकरण लिखा और साधुत्व अनुशासित किया। आज हमें चाहे उन शब्दों का मूल ज्ञात न हो किन्तु वे विश्व की सारी भाषाओं से आकर संस्कृत में उसी समय मिल गये थे। केन्द्र जैसे शब्द यूनानी भाषा से आये थे। अमर कोष में आज भी केन्द्र शब्द नहीं मिलता। सैंकड़ों की संख्या में द्रविड भाषाओं से शब्द आकर संस्कृत के बन गये थे। नाक, नक्र, कोकिल, मयूर, केयूर, गुड आदि न जाने कितने द्रविड मूल वाले शब्द संस्कृत के हो गये। पाणिनि के समय तक जो प्रचलित हो गये थे उनका तो पाणिनि ने व्याकरण बना दिया जिनमें वैदिक, उत्तर वैदिक तथा लोक भाषाओं के शब्द शामिल थे। शेष के साधुत्व के अनुशासन के लिए परवर्ती वैयाकरणों व व्याख्याकारों ने सूत्र लिखे। उणादि सूत्र ऐसे ही शब्दों को पाणिनीय व्याकरण से संगत सिद्ध करने के लिए बनाये गये थे। मयूर, केयूर आदि शब्द आपको इसी उणादि में मिलेगें। संस्कृत शब्द भण्डार के इस महासागर की अंतर्धाराएं भारत की सारी भाषाओं में पहुंची (उर्दू, आदि एक दो अपवादों को छोड़कर, जिन्होंने भारतेतर भाषाओं और लिपियों को आधार बनाया)।

यही रहस्य है इस कथन का कि संस्कृत की शब्दावली समस्त आर्य भाषाओं में विपुल परिमाण में पहुंची है और घुलमिल गई है। मोटे अनुमान से कन्नड़ और तेलगु में ८० प्रतिशत, मलयालग में ७० प्रतिशत और तमिल में ६० प्रतिशत शब्दावली संस्कृत मूल की है। आज राजनैतिक कारणों से तमिल में से संस्कृत मूल के शब्दों के क्रमिक वहिष्कार का प्रयत्न चाहे हो रहा हो किन्तु शेष सभी भाषाओं में वह शब्दावली इतनी व्यापक है कि उन भाषाओं में सांस्कृतिक एकत्व का स्पष्ट आभास होने लगता है। जिस प्रकार राम कथा, पाण्डव कथा तथा महाबीर, बुद्ध आदि महापुरुषों के प्रति श्रद्धा सारे देश को एक सांस्कृतिक भाव भूमि पर ला खड़ा करती है उसी प्रकार संस्कृत की यह

शब्दावली सब भाषाओं को एक रंग देती है। संस्कृत के शब्दों से सारे देशवासियों के नामकरण सदियों से होते रहे हैं। बंगाल में बंगला बोलने वालों के नाम तारिणीप्रपन्न, विधुशेखर आदि, उड़िया बोलने वालों के नाम कालिंदीचरण आदि, तमिल बोलने वालों के पार्थसारथि,, कोदंडपाणि आदि और मराठी बोलने वालों के पांडुरंग, विठ्ठल, गोविन्द, मुकुन्द आदि समस्त संस्कृत मूल के होते रहे हैं। धर्म तथा सम्प्रदाय उनका कोई भी हो चाहे वे सनातनी हों या आर्यसमाजी, आस्तिक या नास्तिक शैव या वैष्णव, चाहे वे संस्कृत जानते हों या नहीं संस्कृत के सुललित शब्दों में नामकरण उनका अवश्य होता रहा है।

साहित्य

संस्कृत के विशाल साहित्य ने (जिसमें महाकाव्य रामायण से लेकर काव्य, नाटक आदि का सारा सर्जनात्मक साहित्य शामिल है। समस्त भारतीय भाषाओं पर जो प्रभाव छोड़ा है वह भी अद्भुत है। पूरे देश में, चाहे किसी भी भाषा में आप बोले, रावण को अहंकार का, भीम को शारीरिक बल का, सीता और सावित्री को पतिव्रता का तथा लक्ष्मण को आदर्श भाई का प्रतीक यदि माना जाता है तो उसका आधार संस्कृत काव्यों की परम्परा ही तो है। आज किसी वयोवृद्ध महापुरुष को किसी विशेष क्षेत्र का भीष्म पितामह कहा जाता है या ज्यादा नींद लेने वाले को कोई कुंभकर्ण कहता है तो यह संस्कृत की पुराकथाओं का देश के सामूहिक अवचेतन पर पड़ा प्रभाव ही तो है। ये प्रतीक देश की सभी भाषाओं में चलते हैं। चाहे बंगला हो, गुजराती हो या मलयालम हो। पंचतंत्र की कथाओं ने तो सारी भाषाओं में समान रूप से देश के नौनिहालों का मनोरंजन किया है और उन्हें एक सांस्कृतिक सूत्र में बांधा है।

जिस प्रकार भाषाओं के साहित्य में राम, कृष्ण, रावण, अर्जुन आदि की पुराकथाओं ने समस्त भाषाओं के कवियों को समान उपमान और प्रतिमान दिये हैं उसी प्रकार संस्कृत के काव्यशास्त्र ने समस्त भाषाओं को रस और अलंकार दिये हैं। मराठी में भी श्रृंगाररस होगा, मलयालम में भी वीर, अद्भुत रस होंगे, बंगला में भी करुणरस होगा। इसी प्रकार संस्कृत का छंदः शास्त्र सब भाषाओं में समान रूप से लोकप्रिय है। इसका प्रमुख कारण तो संस्कृत भाषा का सार्वदेशिक और सार्वकालिक काव्य की और शास्त्र की भाषा होना था किन्तु इसके कारण अन्य भारतीय भाषाओं ने भी संस्कृत का काव्य शास्त्र और छंदः शास्त्र इतने स्नेह से अपनाया कि मराठी से लेकर मलयालम तक के काव्यों में संस्कृत के वसंततिलका, शिखरिणी आदि छंद लिखे जाने लगे। जिस प्रकार आयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध का हिन्दी महाकाव्य प्रियप्रवास, द्रुतविलंबित, शार्दुल-विक्रीडित आदि संस्कृत के छन्दों में निबद्ध है उसी प्रकार मराठी, गुजराती, मलयालम आदि भाषाओं के अनेक शास्त्रीय काव्यों में उनकी अपनी भाषाओं में संस्कृत छन्दों का गुम्फन

मिलता है। संस्कृत के देश भर में प्रसार के कारण उसका अन्य भाषाओं से सम्पर्क इतना घनिष्ठ हो गया कि जिस प्रकार उसके शब्द अन्य भाषाओं में घुलमिल गये उसी प्रकार उसकी अभिव्यक्ति भी इस तरह आत्मसात् हो गई कि एक परम्परा यह भी चल निकली कि दक्षिण की भाषाओं में काव्य रचना करने वाला एक ही छंद में मलयालम और संस्कृत साथ साथ लिखने लगा। जिस प्रकार गद्य और पद्य को मिलाकर चम्पू काव्य (दक्षिण की भाषाओं में तुलाल) लिखे जाते थे उसी तरह तेलगु, कन्नड़ या मलयालम की कविता में संस्कृत कविता मिलाकर काव्य लिखे जाने लगे थे। इस प्रकार के मेल (मिश्रण) को मणिप्रवाल शैली कहा जाता था। सभी भाषाओं को स्नेह की भागीरथी में नहलाकर इस धारा में जोड़ने वाली एक भाषा ने भावात्मक एकता के सूत्र में इन सब काव्यों के पाठकों को किस प्रकार बांधा है यह इससे स्पष्ट हो जाएगा।

ऐतिहासिक प्रभाव

चाहे किन्हीं भी कारणों से ऐसा हुआ हो संस्कृत को अमरभाषा और सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक भाषा माना जाने लगा। एक कारण तो यह रहा कि धर्म की प्रमुख धारा का साहित्य वेद, उपनिषद, सांख्य, न्याय, वेदांतादि षड्दर्शनों का साहित्य संस्कृत में ही था अतः उसका अनुशीलन सारे देश में होता था। दूसरा यह था कि पाणिनि ने वैज्ञानिक व्याकरण नियमों में बांधकर इसे ऐसा रूप दे दिया जिसके अनुसरण के कारण उपनिषदों से लेकर आज तक की संस्कृत का स्वरूप एक और प्रायः अपरिवर्तित रहा। हिन्दी और अंग्रेजी जैसी भाषाओं का स्वरूप तो एक दो सदियों में इतना बदल जाता है कि दो तीन सौ वर्ष पुरानी भाषा के साथ आज की भाषा का तालमेल बिठाना असम्भव हो जाता है। वौसर से पहले की अंग्रेजी मुश्किल से ८०० वर्ष पुरानी हुई है पर आज उसका समझना असम्भव है। ८०० वर्षों में अंग्रेजी पूर्णतः बदल गई। ८०० वर्ष पुरानी हिन्दी भी आज नहीं समझी जा सकती। पृथ्वीराज रासों को बिना टीका के कौन समझ सकता है ? किन्तु उपनिषदों की संस्कृत जो तीन-चार हजार वर्ष पुरानी है, शंकराचार्य की संस्कृत जो १२०० वर्ष पुरानी है तथा गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी की संस्कृत जो इस युग की है तीनों को उठाकर देख लें, तीनों में एक एक सहस्राब्दी का अन्तर है किन्तु ऐसा लगता है कि वे एक ही युग में लिखी गई हों। यह त्रिकालातीत अमरता संस्कृत की ऐसी अद्भूत विशेषता है जो विश्व की किसी भाषा में नहीं पायी जा सकती है। इस सार्वकालिकता के साथ साथ इसकी सार्वदेशिकता भी उल्लेखनीय है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक और सोमनाथ से ब्रह्मपुत्र तक ठीक उसी प्रकार संस्कृत लिखी जाएगी जैसी नेपाल, मारीशस् या जर्मनी में। इसे यह कालजयित्व और विश्वजनीनत्व दिया पाणिनि ने जिनका अनुसरण सभी देशों में और सभी कालों में किये जाने का एक अलिखित समझौता विद्वानों में हो गया था।

इसी कारण समस्त देश में यह परंपरा सुप्रतिष्ठित हो गई थी कि धर्म और दर्शन के शास्त्रीय ग्रन्थ संस्कृत में, विशेषकर संस्कृत पद्यों में लिखे जाते थे। महावीर और बुद्ध ने चाहे उपदेश लोक भाषाओं में दिये हो किन्तु उनके भी दर्शन ग्रन्थ विद्वानों द्वारा इसलिए संस्कृत में लिखे गये कि उन्हें सार्वकालिकता, सार्वदेशिकता एवं शास्त्रीयता प्राप्त हो। जैन दर्शन के मूर्धन्य ग्रन्थ बहुत बड़ी मात्रा में संस्कृत में लिखे गये। उमास्वाति का तत्त्वार्थाधिगमसूत्र जैसे शास्त्रीय जैन ग्रन्थ, प्रमेयकमलमार्तण्ड जैसे विमर्श ग्रंथ संस्कृत में ही मिलते हैं। बौद्ध दार्शनिकों ने भी (जैसे असंग, बसुबंधु, चन्द्रकीर्ति) शास्त्रीय दर्शन ग्रन्थ संस्कृत में लिखे। उनके ललितविस्तर जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ केवल संस्कृत में ही मिले हैं। चिरकाल तक अपने वंश की कीर्ति अमर और अक्षुण्ण रहे इस उद्देश्य से समस्त राजवंशों ने अपना इतिहास अमर भाषा संस्कृत में लिखाया चाहे वे कश्मीरी हों जिन्होंने राजतरंगिणी जैसे ऐतिहासिक काव्य लिखाये या मेवाड़ी हों जिन्होंने राजप्रशस्ति जैसे काव्य शिलालेख के रूप में खुदाए। शिलालेखों और प्राचीन अभिलेखों की भाषा का अशोक के बाद प्रमुखतः संस्कृत में होना तो सुविदित है ही, बड़े दूरस्थ राजवंशों में पत्रकार भी संस्कृत में होता था। शिवाजी और मिर्जा राजा जयसिंह क्रमशः मराठी और राजस्थानी भाषी थे। वे आपस में किस प्रकार पत्राचार करते ? या तो फारसी में या संस्कृत में। स्पष्ट है कि फारसी विदेशी भाषा थी। जिस विषय पर इन्होंने पत्र लिखे वह गोपनीय था तो उन्होंने संस्कृत को चुना। सम्पर्क भाषा की यह भूमिका संस्कृत को सहज ही मिल गई थी। नैषधचरित के लेखक श्रीहर्ष ने लिखा है कि दमयंती स्वयंवर में विभिन्न प्रान्तों के राजा एकत्र हुए जिनकी भाषाएं अलग अलग थीं। तव उन्होंने आपस में संस्कृत भाषा में बातचीत की अन्योन्य-भाषाऽनवबोध- भीतेः संस्कृत्रिमाभिर्व्यवहारवत्सु। सम्पर्क भाषा की इस सहज भूमिका ने संस्कृत को सारे देश में शास्त्रार्थ की भाषा भी बना दिया था, धर्म की भाषा और संस्कृत की भाषा भी बना दिया था। आज तक भी पूरे देश में समस्त हिन्दु धार्मिक काय इसी वैदिक भाषा में सम्पन्न होते हैं। इस भाषा के मंत्रों और स्तोत्रों के प्रति सबकी समान निष्ठा है। यह ज्योतिष की भाषा तो है ही, सही मायनों में पुस्तकालय भाषा की इसने सदियों तक भूमिका निभाई थी। आयुर्वेद, तंत्र, मंत्र सबके ग्रन्थ इसी में लिखे जाते थे।

धर्मनिरपेक्ष भाषा

ऊपर के विवरण का यह तात्पर्य नहीं लिया जाना चाहिए कि धर्म की भाषा होने के कारण यह हिन्दुओं या सनातनियों की भाषा मान ली गई थी। यह तो सब है कि सनातन धर्म और आर्य समाज जैसी परम्पराओं में इस भाषा का पूर्ण प्रयोग रहा किन्तु यह उन्हीं तक सीमित नहीं रही। बौद्धों, जैनों, सिखों ने ही नहीं मुसलमानों ने भी उपनिषदों और दर्शन की भाषा होने के नाते इसका इतना अनुशीलन किया कि इन सभी वर्गों में सैकड़ों संस्कृत विद्वान हुए जिन्होंने अनेक ग्रन्थ संस्कृत में लिखे। इसकी यह धर्म-निरपेक्ष भूमिका भी अपने आप में अद्भुत है। चूंकि इस अमर भाषा में

लिखा कोई भी सम्प्रदाय या इतिहास अमर हो जाएगा ऐसी धारणा थी इसलिए मुगल बादशाहों ने भी संस्कृत विद्वानों को अपने दरबारों में रखा और अपनी कीर्ति संस्कृत में निबद्ध करवाई। अकबर के समय में अल्लोपनिषद लिखी गई, जिस पर इस्लाम धर्म और कुछ कुरान की शैली का स्पष्ट प्रभाव है। उधर दाराशिकोह जैसे शाहजादों ने और अब्दुर्रहीम खानखाना जैसे सामन्तों ने इसका गहन अध्ययन किया। वेदों, उपनिषदों, गीता आदि का अपनी अपनी भाषाओं में अनुवाद किया और करवाया। खानखाना संस्कृत के बहुत अच्छे कवि थे। उन्होंने खेटकौतुकम् त्रयस्त्रिंशद्योगावली जैसे ज्योतिष ग्रन्थ तो संस्कृत में लिखे ही हैं गंगा की स्तुति में गंगाष्टक इतना अच्छा लिखा है कि वह संस्कृत स्तोत्रों की परम्परा का उत्कृष्ट रत्न बन गया है। कश्मीर में जैनुल आबदीन (१४वीं सदी) जैसे अनेक संस्कृत प्रेमी शासक हुए हैं। रुद्ध कवि ने खानखानाचरित्रचम्पू संस्कृत में इसलिए लिखा था (१६०९ ई०) कि खानखाना को महापुरुषों की श्रेणी में पूरा देश गिनने लगे। आज भी गुलाम दस्तगीर जैसे मुस्लमान धर्म गुरु मौजूद हैं जो संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं और संस्कृत में ही बोलते हैं। यह धर्मनिरपेक्ष एकता की एक भाषा और सम्पर्क भाषा की भूमिका इस भाषा ने सदियों से धारण कर रखी है।

प्रान्तीयता और क्षेत्रीयता यदि किसी भाषा को छूकर भी नहीं गई तो वह संस्कृत ही है। सदियों से हम मम्मट और कल्हण जैसे कश्मीरियों, जगन्नाथ जैसे कि दक्षिणियों, भट्टोजि दीक्षित जैसे मराठियों, जयदेव जैसे उत्कलियों को मूर्धन्य संस्कृत आचार्य के रूप में पढ़ते आ रहे हैं। सारा देश उनके प्रति श्रद्धावनत है। यह कभी किसी ने नहीं सोचा कि वे किस प्रान्त के थे। कालिदास का तो आज तक यह पता नहीं कि वे कहाँ के थे। पूरे देश के होने की भावना इसी भाषा की देन है। जिस प्रकार गीता को, चाणक्य के अर्थशास्त्र को या शंकराचार्य के स्तोत्रों को किसी प्रान्त के साथ नहीं जोड़ा जा सकता, उसी प्रकार इस भाषा को किसी प्रान्त की नहीं माना जा सकता। इसके शास्त्र भारत की सभी लिपियों में लिखे गये हैं, भाषा संस्कृत ही रही है। जिस प्रकार इसने प्रान्तों और शताब्दियों के कालखण्डों की सीमा का अतिक्रमण कर लिया उसी प्रकार धर्म की सीमाओं को भी यह लांघ गई थी। सही अर्थों में पूरे देश की राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक एकता की, सारे भारत की भावनात्मक इकाई की यह प्रतिनिधि भाषा बन गई थी और आज भी है। यही कारण है कि चाहे हिन्दी जैसी भाषाओं के बारे में किसी प्रान्त में कुछ विवाद हो किन्तु संस्कृत के नाम पर कभी कोई विवाद नहीं रहा। राजनीति की घृणित दुर्गन्ध अब वहां भी अपनी सडांद फैलाने लगे तो यह देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य होगा।